वर्ष - 15, अंक - 3, 2003, 33 - 41 से पुनर्मुद्रित

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आत्मज्ञान : आधुनिक मनोविज्ञान एवं हमारे जीवन के संदर्भ में

■ पारसमल अग्रवाल *

सारांश

आलेख में आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अध्यात्म एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिकों/चिन्तकों की दृष्टि से परिचय देने के उपरान्त भागदौड़ पूर्ण वर्तमान जीवन शैली में वास्तविक शान्ति के उपाय वर्णित किये गये हैं।

— **सम्पादक**

पश्चिम जगत में भौतिकता से लिप्त मानवों को सुख - शान्ति का मार्ग दिखाने हेतु अविनाशी आत्मा के अस्तित्व को कई उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक सरल भाषा में पुस्तकों, कैसेटों एवं व्याख्यानों द्वारा समझा रहे हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिकों में वेन डायर,[1] दीपक चोपड़ा,[2] केरोलिन मीस,[3] लुई हे,[4] गेरी झुकाव,[5] रिचर्ड कार्लसन,[6] आदि के नाम प्रमुख हैं। पश्चिम के पाठकों को ऐसे वैज्ञानिक क्या परोस रहे हैं इसकी एक झलक वेनडायर[7] की निम्नांकित पंक्तियों से मिल सकती हैं -

"Make an attempt to describe yourself without using any labels. Write a few paragraphs in which you do not mention your age, sex, position, title, accomplishments, possessions, experiences, heritage or geographic data. Simply write a statement about who you are, independent of all appearances".

उक्त पंक्तियों का भावार्थ यह है कि अपने परिचय के बारें में कुछ पैराग्राफ ऐसे लिखो जिसमें आपकी उम्र, लिंग, पदवी, उपाधि, उपलब्धियां, संपत्ति, संग्रह, अनुभव, परिवार, नगर आदि का उल्लेख न हो। केवल अपने बारे में ऐसा परिचय लिखो जो इन बाहरी रूपों पर आधारित न हो।

ऐसा लिखने के पीछे वेन डायर का भाव यह स्पष्ट करने का है कि समस्त बाहरी रूपों से परे भी आप हो। 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' वाली धुन तक वे अपने पाठकों को ले जाना चाहते हैं।

ऐसी पुस्तकों के कई संस्करण निकलना इस बात का प्रमाण है कि जनता को इनमें लाभ मिल रहा है। पाठकों को लाभ कैसा मिल रहा है इसकी एक झलक एक पाठक के निम्नांकित शब्दों से स्पष्ट होती है।[8]

''प्रिय डॉ. डायर, मेरे पुत्र की हत्या लुटेरों द्वारा हो गई थी व उससे भारी आघात मुझे पहुँचा था। आपकी पुस्तकों व कैसेटों से जब मुझे यह समझ में आया कि हम शरीर के अन्दर स्थित आत्मा हैं, न कि प्राण सहित शरीर, तब मुझे सांत्वना मिली। मैं अपने पुत्र की मृत्यु को तो नहीं भूल पाई हूँ किन्तु यह समझ में आया है कि मृत्यु कहानी का अन्त नहीं है। आपसे प्राप्त शिक्षा को मैं अपने शब्दों में निम्नांकित कविता के रूप में लिख रही हूं जिसे पढ़कर आपको अच्छा लगेगा -

* रसायनशास्त्र विभाग, ओक्लोहोमा स्टेट यूनिवर्सिटी, स्टिलवाटर ओ.के. 74078 यू.एस.ए.

आप "मुझे" देख नहीं सकते,
आप तो केवल शरीर देखते हो,
जिसे "मैं" समझ बैठते हो,
शरीर जो दिखता है वह है नाशवान,
किन्तु "मैं" तो हूं अमर।

Sincerely, MaryLou Van Atta (Newark, ohio)

एक अन्य अमरीकी पाठिका इस पुस्तक के पृ. 119 पर अपना अनुभव वर्णित करती है कि किस तरह शरीर से आसक्ति भाव त्याग कर परमात्म तत्व में अपनत्व का अभ्यास करने से उसका कैंसर दूर हो गया। डॉक्टरों ने तो उसे कह दिया था कि अब उसकी मृत्यु कुछ ही माह दूर है किन्तु न केवल उसका कैंसर दूर हुआ अपितु 9 (नौ) वर्षों में एक बार भी उसे डॉक्टर या अस्पताल की आवश्यकता नहीं हुई। (नोट : इस टिप्पणी का उद्देश्य तो छिपी हुई आध्यात्मिक शक्ति को उजागर करने का है। चिकित्सा विज्ञान से हजारों वर्षों में अब तक जो रोगियों को प्रत्यक्ष लाभ मिल रहा है उसका महत्व नकारा नहीं जा सकता है।)

आध्यात्मिक मनोविज्ञान की आवश्यकता

एक जमाना था जब मनोवैज्ञानिकों के सामने ज्यादा समस्याएं पारिवारिक झगड़ों की या हीन भावना से ग्रस्त निराशा की आती थी। आत्मा का सहारा लिए बिना ऐसी समस्याओं को सुलझाने के लिए भूतकाल के व बचपन के अनुभवों को सुनकर रोगियों को सलाह मिलती थी। आज जीवन में संघर्ष बढ़ गया है व व्यक्ति अकेलापन कठिनाई के समय अनुभव करता है। जिसके पुत्र की हत्या हो गई हो उसको उसके बचपन की कोई भी घटना मन की अशान्ति को हल करने का मार्ग नहीं दिखा सकती है। उसके लिए तो आत्मा का आश्रय ही परम औषधि है जो उक्त उदाहरण में असर करती हुई दिखाई देती है।

इस तरह की आवश्यकता के आधार पर ही गेरी झुकाव जैसे मनोवैज्ञानिक लिखते हैं कि अब '''आध्यात्मिक मनोविज्ञान'' को विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें आत्मा, पुनर्जन्म एवं कर्म सिद्धांत हाशिये में न होकर केन्द्र में हो। उनके शब्दों में[9] -

"Re-incarnation and the role of karma in the development of the soul will be central parts of spiritual psychology".

गेरी झुकाव के अनुसार इस तरह के आध्यात्मिक मनोविज्ञान द्वारा इस स्तर की समझ विकसित हो सकती है कि क्रोध, डर, ईर्ष्या आदि भावनाओं को जिनसे व्यक्ति को हानि पहुँचती है उनको भी इस तरह से समझने की आवश्यकता है कि इनके उदय के समय व्यक्ति और नये ऋणात्मक कर्म नहीं बांधे। गेरी झुकाव[10] के शब्दों में -

"The fears, angers and jealousies that deform the personality can not be understood apart from karmic circumstances that they serve. When you understand, and truly understand, that the experiences of your life are necessary to the balancing of the energy of your soul, you are free to not react to them personally, to not create more negative karma for your soul."

गेरी झुकाव का मन्तव्य उक्त कथन में मानवीय कमजोरियों के प्रति भी समता भाव रखने का है। वस्तु व्यवस्था पर यानी कर्म सिद्धांत पर आस्था होना आवश्यक है।

इस आस्था के अन्तर्गत यह समझ होती है कि सृष्टि में अकस्मात कुछ भी नहीं होता है, सभी कुछ नियमों से होता है व आत्मा अनन्त शक्तिमान, अविनाशी व परिपूर्ण है। जब तक यह समग्र दृष्टि नहीं होती है तब तक व्यक्ति अपने दुर्भाग्य के लिए मौसम, सरकार, परिवार, पड़ोसी, कलियुग आदि को जिम्मेदार ठहराता है। अध्यात्म की थोड़ी समझ आने के बाद व्यक्ति यह जान लेता है कि उसके जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसके लिए उसके द्वारा पूर्वकृत कर्म ही जिम्मेदार हैं। विशिष्ट ज्ञानी इस समझ को भी अपूर्ण समझ मानते है क्योंकि दुर्भाग्य के लिए स्वयं को दोषी मानना भी तो कष्ट का कारण बनता है, यह समझ स्वयं को धिक्कारने की ओर यदि ले जाये तो फिर इससे लाभ कम होता है व हानि अधिक होती है। जो अधूरी समझ के कारण इस तरह से स्वयं को धिक्कारने की स्थिति में हो उसे यह समझना बाकी है कि तुम तो आत्मा हो जिसे दुर्भाग्य छूता नहीं है। भारतीय दर्शन में व जैनाचार्यों ने इस तथ्य को विस्तृत विज्ञान के रूप में निरूपित किया है जिसे भेद विज्ञान या वीतराग विज्ञान कहा जाता है। भेद विज्ञान को इतना अधिक महत्व दिया है कि इसे मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी या धर्म का प्रारंभ भी कहा है। भेद विज्ञान की अवस्था को आत्मज्ञान की उपलब्धि या सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की अवस्था भी कहा जाता है। समयसार कलश में कहा[11] है कि जितनी भी आत्माएं परमात्मा बनी हैं वे सभी भेदविज्ञान के द्वारा बनी हैं व जितने भी जीव संसार में बंधे हैं वे भेदविज्ञान के अभाव द्वारा ही बंधे हुए हैं।

भेदविज्ञान के अन्तर्गत ज्ञानी यह समझता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, वाणी नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, इनका कारण नहीं हूँ, इनका कर्त्ता नहीं हूँ....; आचार्य अमृतचन्द्र ~~समयसार कलश में~~ बताते हैं[12] -

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषां।
कर्त्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम्॥

इसी तरह आचार्य कुन्दकुन्द समयसार[13] में लिखते हैं कि -

कर ग्रहण प्रज्ञा से नियत, ज्ञाता है सो ही मैं ही हूं।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरे से पर ही जानना॥

इसी ग्रंथ में आचार्य समझाते हैं कि -

उपयोग में उपयोग, को उपयोग नहीं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोध विषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोग में॥[14]

इन गाथाओं का संक्षिप्त भावार्थ यह है कि क्रोध, अहंकार, डर आदि विकारी भाव ज्ञान-दर्शन (उपयोग) स्वभाव वाले मुझ आत्मा से भिन्न हैं। इसी तारतम्य में आचार्य अमृतचन्द्र समयसार कलश[15] में एक सिद्धान्त निरूपित करते हुए शिक्षा देते हैं कि -

सिद्धान्तोऽयमुदात्त चित्त चरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योति: सदैवास्म्यहं।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावा: पृथग्लक्षणा
स्तेहं नास्मि यतोऽत्र ते मम पर द्रव्यं समग्रा अपि॥

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि इस सिद्धान्त का सेवन करना चाहिए कि ''मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूं, जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वे मैं नहीं हूं, क्योंकि वे सभी मेरे लिए पर हैं।''

तात्पर्य यह है कि यह समझ होना चाहिए कि जो अविनाशी आत्मा है वह मैं हूँ। क्रोध, विकार आदि परिस्थिति के अनुसार यानी कर्मोदय के अनुसार पैदा होते हैं व नष्ट होते रहते हैं किन्तु मेरा कभी नाश नहीं होता है अत: क्रोध, विकार आदि भाव में ममता या ममत्व या अपनापन नहीं रखना चाहिए।

दूसरे शब्दों में, जैसे शरीर आत्मा के वस्त्र की तरह है व बदलता रहता है, उसी तरह क्रोध, अहंकार, छलकपट, लालच, घृणा, डर आदि विकारी भाव भी वस्त्र की तरह बदलते रहते हैं, अन्तर यह है कि शरीर यदि बाहर दिखने वाला वस्त्र है तो ये भाव अंतरंग वस्त्र (Undergarments) हैं। शास्त्रीय भाषा में इन्हें अंतरंग परिग्रह कहा जाता है।

प्रश्न : क्रोध, डर, लालच, ईर्ष्या आदि गंदे संस्कारों या विचारों को अपना नहीं मानेंगे तो उन्हें हटाने के प्रयास हमारे से नहीं होंगे, हम आलसी हो सकते हैं। अत: सत्यमार्ग या कल्याणकारी मार्ग या शान्ति व आनन्द का मार्ग क्या होना चाहिए?

उत्तर : वास्तव में यह एक उलझन है। यदि हम शरीर एवं मन की क्रियाओं को अपना समझते हैं तो जब भी इनसे गलती होती है तब हमें धिक्कारपन होता है एवं बुरा लगता है व इस प्रक्रिया में हम दु:खी होकर नवीन पापों का बंध कर लेते हैं। किन्तु यदि हम इन्हें अपना नहीं समझते हैं तो फिर हम बेपरवाह हो सकते हैं, या आलसी हो सकते हैं, यह सोचकर कि मैं तो अविनाशी आत्मा हूं व मुझे किससे भी लाभ-हानि नहीं है तो फिर डर किस बात का, ऐसी स्थिति में गलत राह पर भी लग सकते हैं। इस प्रकार यह उलझन बनी रहती है कि दोनों में से किसे चुने। इसका उत्तर यह है कि यथायोग्य समझो। इस 'यथायोग्य' की व्यवस्था हेतु जैन दर्शन में अनेकान्त की व्यवस्था है। कल्याणकारी मार्ग को अनेकान्त रूप से आचार्यों ने शास्त्रों में विस्तार से समझाया है जिसे हम सरल भाषा में व अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में एक त्रिभुज के तीन बिन्दुओं के (देखिए चित्र क्रं. 1) द्वारा समझ सकते हैं। इस त्रिभुज को समझने के पहले नैतिकता के सामान्य शिष्टाचार की समझ होना चाहिए। मेरा जीवन दूसरों के मार्ग में कांटे न बिछाए - यह समझ तो होना ही होना चाहिए।

जैसे कोई विज्ञान सीखना चाहे तो न केवल विज्ञान सीखना होता है अपितु प्रयोगशाला के अनुशासन को भी समझना होता है, साथ में कार्य करने वाले व्यक्तियों में मेलजोल के तरीके भी सीखने होते हैं, व शरीर के भोजन व विश्राम का भी ध्यान रखना होता है। उसी तरह सुख के इस मार्ग को समझने एवं अभ्यास करने हेतु एक तरफ अविनाशी आत्मा में अपनत्व स्थापित करना होता है तो दूसरी तरफ शरीर, मन एवं वाणी की आवश्यकताएं व मनोकामनाएं किस तरह अन्य प्राणियों एवं स्वयं के विकास में निमित्त बन सकती हैं व किस तरह बाधा बन सकती है इसका ज्ञान किया जाता है व उसके अनुसार आचरण होता है। साथ ही वस्तु-व्यवस्था की समझ भी आवश्यक होती है। इन तीनों घटकों को त्रिभुज के तीन बिन्दुओं के रूप में चित्र क्रं. 1 में दर्शाया गया है। तीनों बिन्दुओं की विशेषताएं निम्नानुसार हैं :

त्रिभुज का एक बिन्दु 'अ' :

इसके अन्तर्गत यह मान्यता एवं समझ पक्की होती है कि मैं पूर्ण सुख व शक्ति का भंडार अविनाशी आत्मा हूं, मेरी आत्मा सदैव पूर्ण है यानी इसको और अधिक अच्छा या पूर्ण करने के लिए बाहर से कुछ भी नहीं चाहिए। आत्मा में परिस्थिति के अनुसार

पैदा होने वाले क्रोध, डर, अहंकार आदि विकारी भाव समुद्र में हवा के द्वारा उत्पन्न लहरों की तरह अस्थायी हैं व ये सब भाव मेरी आत्मा का बिगाड़ - सुधार नहीं कर सकते हैं। मन में कभी शान्ति अनुभव होती है व कभी अशान्ति अनुभव होती है, यह मन का बिगाड़ - सुधार आत्मा से भिन्न है यानी मुझसे भिन्न है, यह बिगाड़ - सुधार आत्मा के बाहर का बाहर रहता है।

त्रिभुज का एक बिन्दु 'स' :

यद्यपि आत्मा पूर्ण है यानी मैं पूर्ण हूँ यानी मेरा बिगाड़ - सुधार नहीं होता है किन्तु शरीर को सामान्यतया भूख लगती है, मन में सामान्यतया मान - अपमान, यश - अपयश एवं सुरक्षा के भाव आते रहते हैं। मन में शान्ति की चाह होती है। शरीर व मन की ये आवश्यकताएं एवं कामनाएं किस तरह संयमित या अनुशासित हों कि स्वयं के तथा अन्य के शरीर व मन की पीड़ा कम से कम हो। परोपकार, सत्संग, अध्ययन, उचित भोजन, उचित वाणी, ध्यान, यथायोग्य मेल - मिलाप की कला इस बिन्दु के अन्तर्गत व्यक्ति सीखता है। सीखते - सीखते यह भी समझ में आने लगता है कि मन की शान्ति का आधार चाह कम करके आत्मदृष्टि करने में है। मन की शान्ति की आधार परिस्थिति से डरने या घबराने में नहीं है। चाह या डर कम करने में सुस्ती भी उचित नहीं व उतावलापन भी उचित नहीं। जैसे शारीरिक व्यायाम करने वाले जानते हैं कि किस तरह सुस्ती हानिकारक है व किस तरह 100 ग्राम का वजन उठाने से मांसपेशियों का व्यायाम नहीं हो जाता है किन्तु 100 किलो का वजन पहले ही दिन उठा लेने में हानि हो जाती है उसी तरह यहां भी यही प्रक्रिया लागू होती है।

त्रिभुज का एक बिन्दु 'व' :

मन में शान्ति रहना, परिवार में सभी का निरोग रहना, व्यापार में लाभ होना शरीर व मन को सुखद लगता है। पुण्यात्मा जीव के इस तरह की मनोकामनाएं सामान्यतया पूर्ण होती हैं। किन्तु इस तथ्य को भी नहीं भूलना है कि प्रत्येक मनोकामना का पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। ज्ञानी के यह समझ विकसित हो जाती है कि कामनाओं की पूर्ति न होने की स्थिति में मन में या शरीर में चाहे असुविधा या अप्रसन्नता या आंसू हों, या पूर्ति की स्थिति में प्रसन्नता हो, मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो इन आंसुओं एवं प्रसन्नता - अप्रसन्नता का ज्ञाता - दृष्टा हूं, इनसे मुझे कोई लाभ - हानि नहीं, इनसे मेरा कोई बिगाड़ - सुधार नहीं, साथ ही यह भी समझ होती है कि सृष्टि में अकस्मात कुछ भी नहीं होता है। सब कुछ नियमों के अनुसार हो रहा है। कर्म - व्यवस्था किसी का पक्षपात नहीं करती है। किन्तु यह कर्म - व्यवस्था इतनी उत्तम है कि जो प्राणी सत्य समझ को अपनाते हैं उनकी संयमित कामनाएं सामान्यतया पूर्ण होती हैं। कभी ऐसा लग सकता है कि जीवन की गाड़ी अच्छी नहीं चल रही है किन्तु ऐसी स्थिति भी प्रकृति की कर्म व्यवस्था के अन्तर्गत ज्ञानी के लिए शुभ सिद्ध होती है।

त्रिभुज के तीनों बिन्दुओं का महत्व है। बिन्दु 'अ' में वर्णित लाभ - हानि से परे आत्मा की समझ न हो तो बिन्दु 'ब' में वर्णित हर्ष - आंसू में समभाव नहीं आ सकता है। बिन्दु 'ब' में वर्णित वस्तु व्यवस्था एवं कर्म सिद्धांत की समझ न हो तो बिन्दु 'स' में वर्णित शरीर की एवं मन की क्रियाएं संयमित नहीं हो जाती है। बिन्दु 'स' की समझ के आधार पर मन व शरीर स्वच्छ न हों तो बिन्दु 'अ' की आत्मा की गहरी समझ ठहर नहीं पाती है।

ज्ञानी को भौतिक लाभ

ज्ञानी को संसारिक उपलब्धियों के सन्दर्भ में आचार्यों के स्थान-स्थान पर ऐसे कथन हैं कि ऐसे भेदज्ञानी के पुण्योदय से कठिन कार्य भी सुलभ हो जाते हैं। धन, संपत्ति, विजय, वैभव, यश, महाराजा, महेन्द्र जैसी ऊंची पदवियाँ भी सुलभ होती हैं।[16] प्रथमानुयोग के सभी ग्रंथ इस तथ्य के साक्षी हैं। आधुनिक विद्वानों में दीपक चोपड़ा यह दावा करते हैं कि जिसे फल प्राप्ति की आसक्ति नहीं है व जो अपने को एवं अन्य प्राणियों को बिगाड़-सुधार रहित अविनाशी आत्मा की तरह देखते हैं उनकी मनोकामनाओं की पूर्ति बहुत सरलता से होती रहती है - इस तथ्य को विस्तार से उन्होंने The seven spiritual Laws of Success. पुस्तक में समझाया है।[17]

आत्मज्ञानी को आत्मिक लाभ के साथ-साथ भौतिक लाभ क्यों होते हैं? पुण्य क्यों बंधता है? इस तरह के मौलिक प्रश्नों के उत्तर देना उसी तरह कठिन है कि गुरूत्वाकर्षण क्यों होता है या धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के बीच आकर्षण क्यों होता है। फिर भी हम उदाहरणों से कुछ मर्म निकाल सकते हैं। जैसे कोई व्यक्ति एक पैसा भी किसी का चुराने की भावना न रखे तो उसको कोई अपार धन संभालने के लिए दे सकता है। आत्मज्ञानी अपनी आत्मा के अतिरिक्त एक कण को भी अपना नहीं मानता है तो प्रकृति की वस्तु व्यवस्था से ऐसी स्थितियां बनती हैं कि विपुल समृद्धियां उसके माध्यम से बहती हैं। जिसको अपना सर्वस्व लूटते नजर आता है वे दूसरों का सर्वस्व लूटना चाहते हैं या येन-केन-प्रकारेण अपनी रक्षा करना चाहते हैं। इसके विपरीत आत्मज्ञानी को कर्म-सिद्धांत में विश्वास होता है व सांसारिक संयोगों में लाभ-हानि नजर नहीं आने के कारण पाप में प्रवृत्ति कम होती रहती है। इससे आत्मज्ञानी की ऊर्जा का क्षय कम होता है जिससे अच्छे विचार होते हैं, अच्छे निर्णय होते हैं, उत्तम स्वास्थ्य होता है, उत्तम मित्र व रिश्ते बनते हैं। निराशा न होने के कारण ज्ञानी को आलस्य भी कम होते हैं। ये सभी घटक एवं पुण्योदय भौतिक उपलब्धियों को आकृष्ट करते हैं।

एक अनमोल रत्न

इस लेख का समापन आचार्य कुन्दकुन्द के एक अनमोल रत्न द्वारा करना चाहता हूं। यह सूत्र वाक्य न केवल रोगियों के लिए उपयोगी है अपितु आज की भागदौड़ में शामिल सांसारिक प्राणियों की किसी भी तरह की मन की अशांति को दूर करने के लिए परम अमृत है। जहां अन्य नुस्खे असफल हो जाते हैं वहां भी यह कार्य करता है। एक शिष्य ने आचार्य से प्रश्न किया कि अशांति कैसे दूर हो तो उसके उत्तर में आचार्य कुंदकुंद ने समयसार में यह कहा -

मैं एक शुद्ध ममत्वहीन रू ज्ञान दर्शन पूर्ण हूं।
इसमें रहूं स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूं॥[18]

अर्थात् अपने को ज्ञान दर्शन से पूर्ण अरूपी शुद्ध आत्मा समझकर उसमें लीन रहने से यानी अशांति के भी ज्ञाता-दृष्टा बनते हुए रहने से अशांति नष्ट हो जाती है। यह नुस्खा कार्य करता है इसका समर्थन आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी करते हैं।[19]

परिशिष्ट 1 -

हम व्यापारी हैं, हम पुरूष/स्त्री हैं, हम खरीददार हैं, हम जैन हैं, हम मनुष्य हैं, हम आत्मा हैं.....। हमारे इतने परिचय हो गए हैं कि हम स्वयं उलझ गये हैं। हम हमारा असली परिचय भूल गए हैं। इस लेख में हमारे असली परिचय की महत्ता एवं

उपयोगिता वर्णित हुई है। पूर्णता की दृष्टि से हमारे समस्त परिचयों को विहंगम दृष्टि से समझने हेतु संलग्न चार्ट में आवश्यक जानकारी संग्रहीत की गई है। कृपया संलग्न चार्ट देखिए।

सन्दर्भ / टिप्पणी -

1. Wayne W. Dyer, 'There's a spiritual solution to Every Problem', (Harpercollins, New York, 2001)
2. Deepak Chopra, 'How to know God', (Harmony Books, New York, 2000)
3. Caroline Myss, 'Anatomy of the Spirit', (Three Rivers Press, New York, 1996)
4. Louise L. Hay, 'You can Heal your Life', (Hay House, Santa Monica, USA)
5. Gary Zukav, 'The Seat of the Soul', (Fireside, New York, 1989)
6. Richard Carlson, 'Don't sweat the samll stuff', (Hyperion, New York, 1997)
7. Wayne W. Dyer, 'Your Sacred self : making the Decision to be Free', (Harper Paperbacks, New York, 1995) Page 269
8. यह संक्षिप्त भावानुवाद है। मूलपत्र हेतु देखें सन्दर्भ क्रं. 1, पृ. 26
9. सन्दर्भ क्रं. 5, पृ. 197
10. वही, पृ. 195
11. आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश क्र. 131
''भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये कित्त केचन। किल
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥''
12. आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित प्रवचनसार गाथा क्र. 160 का संस्कृत अनुवाद
13. समयसार, गाथा 299
14. वही, गाथा 181
15. समयसार कलश, क्र. 185
16. आचार्य समन्तभद्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक क्र. 1 - 36 से 1 - 40
17. Deepak Chopra, 'The seven spiritual Laws of success, A practical Guide to the fulfillment of your Dreams' (Amber-Allen, San Rafael, CA, USA; 1994)
18. समयसार, गाथा 73.
19. सन्दर्भ क्रं. 7 के पृ. 136 पर निम्नांकित पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

First you want to watch your thoughts. Then you want to watch yourself watching your thoughts. Here is the door to the inner space where, free from all thoughts, you experience the bliss and the freedom that transport you directly to your higher self.

इसी क्रम में वेन डायर लिखते हैं -

The simple exercise of watching your mind manufacturing its thoughts will eventually cause unwanted, unnecessary, erroneous thoughts to dissolve.

प्राप्त - 20.12.02

चित्र क्रमांक 1 – सामान्य आत्मज्ञानी की समझ

मैं अनन्त सुख व शक्ति का भण्डार, अविनाशी आत्मा हूँ। मेरी आत्मा सदैव पूर्ण है। इसमें न तो कुछ मिलाना सम्भव है और नही कुछ घटाना। सभी आत्माएँ बिगाड़ – सुधार से परे हैं।

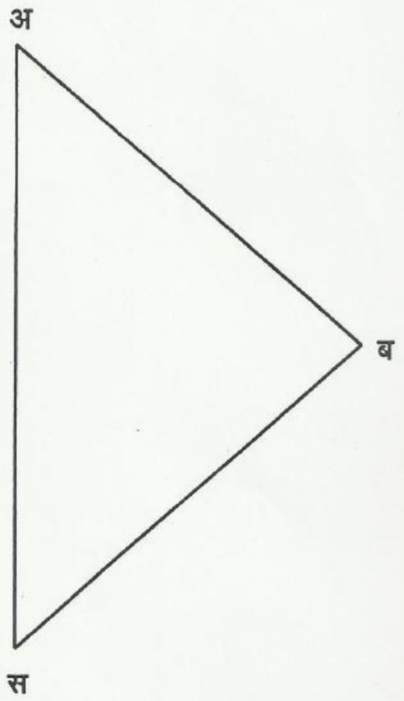

सृष्टि में सभी कुछ नियमों के अनुसार ही होता है। कर्म – सिद्धान्त किसी का पक्षपात नहीं करता है। किन्तु जो प्राणी सत्य समझ को अपनाते हैं उनकी मनोकामना, सामान्यतया पूर्ण होती हैं। प्रत्येक चाह का पूर्ण होना आवश्यक नहीं है। चाह पूर्ति की स्थिति में कभी मन में प्रसन्नता या होठों पर मुस्कान हो, व चाह – पूर्ति न होने की स्थिति में कभी मन में अप्रसन्नता या आँखों में आँसू आ सकते हैं किन्तु हर स्थिति में मैं तो आत्मा हूँ व इस तरह की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का मात्र ज्ञाता – दृष्टा हूँ।

मन एव शरीर की आवश्यकता, व कामनाएँ अनुशासित व संयमित रहते हुए पूर्ण होती रहें। मन की शक्ति का उपाय चाह कम करके आत्मदृष्टि करने में है। चाह कम करने में सुस्ती भी उचित नहीं, उतावलापन भी उचित नहीं। परोपकार, सत्संग, अध्ययन, यथायोग्य मेल – मिलाप, उचित भोजन, उचित वाणी, ध्यान आदि इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

हमारा परिचय (प्रश्न एक, उत्तर अनेक)

जब अन्य द्वारा हमसे यह पूछा जाये - 'आप कौन हैं?', तब उत्तर निम्नांकित प्रकार के होंगे

(व्यावहारिक परिचय)
मनुष्य, भारतीय, अमरीकी, पुत्र, मित्र, खिलाड़ी, व्यापारी, विद्वान, साधु, सुन्दर, धनवान ....
(उचित विशेषणों एवं संबंधों सहित उक्त पदवियाँ)

इसकी उपयोगिता क्या है?
लोक व्यवहार इस प्रकार के उत्तर से ही चलता है।

सावधानी
1. आवश्यकतानुसार पर्याप्त एवं सही परिचय की समझ से व्यक्ति की प्रामाणिकता बनती है।
2. दुनिया के सामने हम कई रूपों में होते हैं किन्तु विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये।

जब यह प्रश्न हम स्वयं ही स्वयं से पूछें तब उत्तर दो प्रकार के होंगे।

(बदलने वाला परिचय)
अभिमानी, लालची, क्रोधी, दुःखी, प्रसन्न, तनावग्रस्त, रागी, द्वेषी,.........

इसकी उपयोगिता क्या है?
इस परिचय से हमें ज्ञात हो सकता है कि हमारी आत्मा का विकास कितना हुआ है। यदि तनावग्रस्त एवं दुःखी हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा का विकास अल्प हुआ है। स्थायी परिचय को न समझने के कारण बदलते हुए परिचय को ही अपना स्थायी परिचय मान लेना दुःख एवं तनावों का कारण बनता है।

सावधानी
हम स्वयं हमारे सामने भी विभिन्न रूपों में बदलते हुए आते हैं। किन्तु इन सभी विभिन्न रूपों में रहते हुए भी हमारे असली या स्थायी परिचय को नहीं भूलना चाहिये। बदलते हुए रूपों को स्थायी मानने की भूल भी नहीं होना चाहिये।

(स्थायी परिचय)
सदैव एक जैसा हूँ, ज्ञान एवं चेतना लक्षण वाला हूँ। समस्त विकारों व वासनाओं से परे हूँ। समस्त अन्य पदार्थों से पृथक हूँ।

इसकी उपयोगिता क्या है?
यह शाश्वत वास्तविकता है जिसकी स्वीकृति एवं समझ में सुख एवं अस्वीकृति में दुःख है। इस सुख या आनन्द की प्राप्ति हेतु इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती है।

सावधानी
जिस प्रकार निवास स्थान का स्थायी पता बताने हेतु मकान का रंग बताना आवश्यक नहीं होता है, रंग का उल्लेख गौण किया जाता है, इसका अर्थ यह नहीं होता कि मकान रंगहीन है। इसी प्रकार आत्मा के स्थायी परिचय के आधार पर अपने को समझने हेतु बदलते हुए परिचय या लौकिक परिचय को गौण करने की आवश्यकता है, नकारने की आवश्यकता नहीं है।